ISSN 2395-051X

ध्वनि, वर्ण और शब्दगत अशुद्धि-शोधन

राजकुमार

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी

शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर, उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सारांश -

भाषा और लिपि एक दूसरे के पूरक होते हैं। हालाँकि लिपि के अभाव में भाषा जीवित और परिवर्तनशील रहती हैं, परन्तु भाषा के अभाव में कोई भी लिपि अस्तित्त्वहीन हो जाती है। फिर भी किसी भाषा की समृद्धता का पैमाना उसकी लिपि भी होती है। लिपि-चिन्ह ही भाषा का मूर्त रूप होते हैं; जबकि भाषा एक मौखिक प्रवाह है जो लिपि के अभाव में क्षैतिज दुनिया में विलीन हो जाती है, सिर्फ कर्णेंद्रियाँ ही उसे कुछ अल्प क्षणों के लिए सम्हाल सकती हैं। इसलिए लिपि-चिन्हों का भाषा के स्थायित्व के लिए विशेष योगदान है। हिन्दी भाषा की सम्प्रेषणीयता एवं मानकता उसकी लिपि देवनागरी पर निर्भर है। देवनागरी लिपि की एक व्यवस्थित वर्णमाला है, जिसमें स्वरों और व्यंजनों के स्थान वैज्ञानिक ढंग से नियत हैं। देवनागरी लिपि की वर्णमाला का समुचित, व्यवहारिक और तार्किक ज्ञान न होने से उपयोगकर्ता लेखन और वाचन में त्रुटिपूर्ण व्यवहार कर बैठता है, जिससे अर्थ का अनर्थ तो होता ही है, साथ ही भावी पीढ़ी के लिए भी हानिकारक हो जाता है। लिहाजा उच्चारण और लेखन दोष का निवारण किया जाना भाषा की मानकता के लिए आवश्यक होता है। चूँकि हिन्दी भाषा विभिन्न आंचलिक, क्षेत्रीय, प्रादेशिक बोलियों, उपबोलियों, विभाषा, उपभाषाओं का सम्मिलित रूप है, जिसकी मानकता निर्धारित होने पर ही उसे राष्ट्रभाषा कहा जा सकता है। भाषा बहता नीर है वह अपने को परिमार्जित एवं परिवर्तित करती रहती है; परन्तु इसका आशय यह नहीं कि वह अपनी मूल प्रकृति और प्रवृत्ति ही खो बैठे। इसलिए भाषा को व्याकरण के नियमों और मानकता एवं सर्वग्राह्यता के पैमानों पर बाँधना अनिवार्य हो जाता है। इसी उद्देश्य से इस आलेख में हिन्दी भाषा के लिए देवनागरी लिपि-चिन्हों पर चर्चा की गई है और वर्तनीगत तथा ध्वनिगत अशुद्धिशोधन का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द - नासिक्य ध्वनि, अनुस्वार ध्वनि, अनुनासिक ध्वनि, पंचमाक्षर

इस प्राणि-जगत् में सजातीय जीवों में पारस्परिक सुख-दुःख या संवेदनाओं विचारों को व्यक्त करने के लिए निश्चित तौर पर एक भाषा की आवश्यकता पड़ती है, जो अर्जित और प्रकृति प्रदत्त दोनों होती है। इस भू-लोक का सबसे बुद्धिजीवी प्राणी मनुष्य है जो भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषाओं का अर्जन और चयन कर उसके प्रयोग में सक्षम है। भाषा सांकेतिक और आंगिक होती है और समाज की धरोहर होती है, जिसे ज्यादातर अर्जित किया जाता है। भाषा को स्थायी और दीर्घकालिक बनाने के लिए उसके लिखित रूप का होना आवश्यक

है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए लिपियों का आविष्कार हुआ है। भाषा, मानव-विकास के साथ-साथ चली है, लेकिन लिपियों का विकास बहुत बाद में हुआ है। भारत में सबसे ज्यादा देवनागरी लिपि का प्रयोग प्रचलन में है, जिसमें अधिकतम संस्कृत और हिन्दी भाषा को लिपिबद्ध किया जाता है। सभी भाषा-ध्वनियों में नासिक्य ध्वनियों का अपना एक विशेष महत्त्व है। नागरी लिपि में नासिक्य ध्वनि चिन्हों को विशेष महत्व प्राप्त है। हिन्दी और संस्कृत भाषा में नासिक्य ध्वनियाँ पूर्णतः स्थापित हैं। वस्तुतः नासिक्य ध्वनियाँ कहते किसे हैं ? स्वर-यन्त्र से निष्कासित वे ध्वनियाँ जो नासिका से, मुखनासिका से स्वर और व्यंजन के रूप में निकलती हैं नासिक्य ध्वनियाँ कही जाती हैं। ''मुखनासिका दोनों से जिन ध्वनियों का उच्चारण होता है वे अनुनासिक कहलाती हैं। अनुनासिकत्व स्वरों का गुण हैं, वह कोई पृथक् ध्वनि नहीं है। किन्तु अनुस्वर एक नासिक्य ध्वनि है।'' हिन्दी भाषा में नासिक्य ध्वनियों के तीन रूप विद्यमान हैं। पहला अनुनासिक स्वर (ँ) के रूप में, दूसरा अनुस्वार (ं) के रूप में और तीसरा नासिक्य व्यंजन (ङ्., ञ, ण्, न्, म्) के रूप में।

''हिन्दी के अनुनासिक स्वर ये हैं- अँ, आँ, इँ, ईं, उँ, ऊँ, एँ, ऐं, ओं, औं। सानुनासिक स्वर शब्द में सर्वत्र (आदि, मध्य, अन्त) प्रयुक्त होते हैं।'' उक्त वर्णित अनुनासिक स्वर हिन्दी भाषा में ही प्रयुक्त होते हैं। संस्कृत भाषा में इनका प्रयोग कहीं पर भी परिलक्षित नहीं होता है। हिन्दी भाषा में भी, जो हिन्दी के शब्द हैं और तद्भव हैं या देशज हैं अथवा जिन विदेशी भाषाओं के शब्दों का हिन्दी में उच्चारण होता है, उन्हीं में अनुनासिक स्वरों का प्रयोग होता है। जैसे- अँगरेजी, काँग्रेस, राँग, साँग, आदि। हँसना, बाँस, सिंवाई, ईंट, कुँवर, खूँखार, पेंच, भैंस, गोंद, भौंरा डाँग, भाँग जैसे अनेकानेक तद्भव शब्दों में अनुनासिकता विद्यमान रहती है। लिपि की वैज्ञानिकता की दृष्टि से प्रत्येक अनुनासिक स्वरयुक्त वर्णों में उसका चिन्ह चन्द्रविन्दु (ँ) अवश्य प्रयुक्त होना चाहिए। यदि नहीं होता है और अनुनासिक चिन्ह के स्थान पर अनुस्वार चिन्ह (ं) प्रयुक्त होता है, तब उसकी वैज्ञानिकता पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है। परन्तु हिन्दी लेखन में ऐसी मात्राएँ जो वर्ण के ऊपर की ओर लगती हैं, उनमें चन्द्रविन्दु के स्थान पर अनुस्वार (ं) ही लगाया जाता हैं; इसलिए कि यदि मात्रा की दायीं तरफ चन्द्रविन्दु लगा दिया जायेगा, तब समय और स्थान ज्यादा खर्च होगा और 'र' की रेफ (र्) का भ्रम भी होने लगेगा तथा अर्थबोध में भी बाधा उत्पन्न होगी। वस्तुतः चन्द्रविन्दु के स्थान पर लगाया गया बिन्दु न तो अनुस्वार का अर्थ देता है और न ही अनुस्वार का द्योतक है। वह अनुनासिक स्वर मात्र है। दूसरा तथ्य यह है कि अनुस्वार बिन्दु (ं) का प्रयोग अधिकांशतः तत्सम शब्दावली में प्रयुक्त होता है और स्वर 'अ', 'आ' के पश्चात् ही प्रयुक्त होता है, जैसे- अंश, कंस, हंस, मांस आदि। इसलिए किसी वर्ण के ऊपर की ओर लगी हुई मात्राओं (ि, ी, ु, ू, े, ै, ो, ौ) के साथ अनुनासिक स्वरध्वनि (ँ) ही स्थान पाती है, जिसको बिन्दु के रूप में लिखा जाता है, लेकिन वस्तुतः है वह चन्द्रविन्दु ही। हिन्दी भाषा में अनुनासिकता दो रूपों में कार्य करती है एक स्वर के रूप में, दूसरे व्यंजन के रूप में। ''अनुनासिक व्यंजनों को कोई नासिक्य, और अनुनासिक स्वरों को केवल अनुनासिक कहते हैं। कभी यह शब्द चन्द्रविन्दु का पर्यायवाची भी होता है।'' परन्तु शब्द अनुनासिक नहीं होते हैं, ध्वनियाँ ही अनुनासिक होती हैं।

नागरी लिपि में पंचमाक्षरों को नासिक्य व्यंजन कहते हैं। 'क' वर्ग का 'ङ' 'च' वर्ग का 'ञ', 'ट' वर्ग का 'ण', 'त' वर्ग का 'न' और 'प' वर्ग का 'म' वर्ण पंचमाक्षर (पाँचवाँ वर्ण) कहलाते हैं। ये पाँचों वर्ण नासिक्य हैं, क्योंकि इनका उच्चारण मुखनासिका से होता है। हिन्दी भाषा में संस्कृत के तत्सम, हिन्दी के तद्भव, देशज और विदेशी तथा संकर शब्दों का पर्याप्त प्रचलन है, इसलिए पंचम् वर्णों का प्रयोग भी भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है। चूंकि संस्कृत में स्वरों की अनुनासिकता का लोप है और अनुस्वार का प्रयोग वर्ग रहित वर्णों के साथ होता हैं; इसलिए वहाँ पंचम् वर्ण की अनिवार्यता सदैव बनी रही है। इसी कारण से शङ्कर, पंचम्, कण्टक, कुन्तल, सम्मुख जैसे पंचमवर्ण संयुक्त शब्द ही प्रयुक्त होते हैं न कि अनुस्वार युक्त क्रमशः शंकर, पंचम, कंटक, कुंतल, संमुख आदि शब्द। संस्कृत में नियम है कि पंचम वर्ण का संयोजन मात्र अपने वर्ग के वर्ण से ही हो सकता है, इतर वर्ग के वर्ण से नहीं। हिन्दी में भी काफी लम्बे समय तक उक्त नियम का पालन किया जाता रहा, लेकिन तीव्र यन्त्रीकरण और समय-सुविधा के मोह ने तथा अत्यधिक हिन्दी-भक्ति के आग्रह-बोध ने पंचम्-वर्ण-प्रयोग के नियम को नेस्तनाबूद कर दिया। टंकण और संगणक (कम्प्यूटर) की क्रान्ति ने पंचम् वर्ण की जगह अनुस्वार (ं) को स्थापित कर दिया है; जिससे लिखित भाषा की अस्मिता और मानकता दोनों नष्ट होती जा रही हैं। प्रयोक्ता अनुस्वार और पाँचवें वर्ण की आवश्यकता एवम् अनिवार्यता से अनभिज्ञ होता जा रहा है। हिन्दी में अनावश्यक बढ़ते अनुस्वार प्रयोग को रोकना होगा, अन्यथा संस्कृत की मानकता के साथ-साथ हिन्दी की मानकता भी खतरे में पड़ जायेगी। हिन्दी में नासिक्य व्यंजन-ध्वनि-प्रयोग के कुछ नियम निर्धारित किये जा सकते हैं। जैसे- 'क' वर्ग एवम् 'च' वर्ग के पंचमवर्ण (क्रमशः ङ,',) के स्थान पर बिन्दु का प्रयोग होना चाहिए; क्योंकि उक्त दोनों पंचम् वर्ण हिन्दी-शब्दों में प्रयुक्त नहीं होते हैं और टंकण में भी असुविधा होती है। 'ण' वर्ण भी पंचमाक्षर के रूप में सिर्फ तत्सम शब्दावली में प्रयुक्त होता है। पंचमवर्ण 'न्' और 'म्' के स्थान पर किसी भी दशा में अनुस्वार का प्रयोग नहीं होना चाहिए, क्योंकि उक्त दोनों पंचमाक्षर नासिक्य ध्वनि के साथ-साथ नासिक्य संयोजन व्यंजन भी हैं। अतः इन दोनों वर्णों के प्रयोग हेतु पंचमाक्षर-वर्ण-प्रयोग का नियम लागू रहना चाहिए, अन्यथा देशी शब्दों के शुद्ध अर्थ प्राप्त होने में समस्याएं आयेंगी। जैसे 'सुन्न' को 'सुंन,' 'मुन्ना' को 'मुंना', 'सुम्मा' को 'सुंमा', 'अम्मा' को 'अंमा' लिखने से न तो पाठक सही अर्थ ग्रहण कर पायेगा और न ही श्रोता ठीक से समझ पायेगा। रोमन लिपि में भी सही रूपान्तरण नहीं हो सकेगा। सही-सही उच्चारण करना भी कठिन होगा। अतः यदि 'न्' और 'म्' वर्ण नासिक्य व्यंजनध्वनि के रूप में उच्चरित हो रहे हैं, तब उन्हें व्यंजनान्त(मूल व्यंजन) 'न्' और 'म्' लिखना चाहिए, अनुस्वार के रूप में नहीं। जैसे सन्तरा, बन्दर, सम्मुख, रमन्ना, मन्थरा आदि शब्द-प्रयोग मानक और शुद्ध हैं। इन्हें क्रमशः संतरा, बंदर, संमुख, रमंना, मंथरा आदि के रूप में नहीं लिखा जाना चाहिए।

हिन्दी शब्दों में अंतिम व्यंजन के रूप में 'ङ्' और 'ञ' का प्रयोग नहीं होता है इसलिए इनका समाहार अनुस्वार (ं) के रूप में ही होना चाहिए और होता भी है। संस्कृत शब्दों में भी इनका प्रयोग उपर्युक्त जैसा सर्वस्वीकृत हो जाए तो अर्थ बोध में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होगी; पर इन दोनों नासिक्य व्यंजन ध्वनियों को

विस्मृत नहीं किया जा सकता, अन्यथा भूतकालीन रचित संस्कृत साहित्य की उपादेयता से हाथ धोना पड़ सकता है। नासिक्य व्यंजन ध्वनि 'ण' से 'किसी शब्द का आरम्भ तो नहीं होता है, लेकिन इसका प्रयोग शब्द के मध्य और अन्त में अवश्य होता है, जैसे- गणना, आचरण अरण्य रावण आदि। इसलिए 'ण्' को अनुस्वार के रूप में नहीं लिखना चाहिए, अन्यथा अर्थग्रहण में व्यवधान उत्पन्न होगा, जैसे अरंय (अरण्य), आंविक (आण्विक) आदि अमानक और अशुद्ध हैं। अतः नासिक्य व्यंजन ध्वनि 'ण' को अनुस्वार रूप में न लिखकर व्यंजनरूप (ण, ण्) में ही लिखना चाहिए। नासिक्य ध्वनि 'न्' और 'म्' को भी अनुस्वाररूप में न लिखकर व्यंजन रूप (न्, म्) में लिखना चाहिए। लिपि और वर्तनी की शुद्धता और मानकता का ह्रास टंकण यंत्रों और टंककों के कारण अधिक हुआ है।

हिन्दी के कुछ शब्दों के उच्चारण में तो अनुनासिकता विद्यमान रहती है लेकिन लेखन में नदारद रहती है। जैसे- सुनवाँ, मुनुवाँ, कनवाँ, धनुवाँ, अमुवाँ, रमुवाँ, कनियाँ, धनियाँ, अमियाँ, छमियाँ, गुनियाँ, रमियाँ, भुमियाँ, चुनियाँ, पुनियाँ, सानियाँ, सोनियाँ, सुनियाँ मकरोनियाँ आदि तमाम शब्दों के उच्चारण में आनुनासिकता (ँ) अनायास विद्यमान है, किन्तु लेखन में नहीं है। उक्त अनुनासिकता उन्हीं शब्दों में होती है जहाँ 'न' और 'म' नासिक्य ध्वनि के बाद 'या' अथवा 'वा' वर्ण से शब्द का अंत होता है। अतः अनुनासिकता 'या' अथवा 'वा' वर्ण पर दर्शित होती है। सवाल उठता है कि लेखन और उच्चारण में भिन्नता क्यों है ? जबकि हिन्दी भाषा की प्रवृत्ति ही है कि जो बोला जाएगा वही लिखा जाएगा। कुछ तो हमारी अनिर्णय की मानसिकता है, और कहीं-कहीं हम लकीर के फकीर हैं। डंके की चोट पर परिवर्तन से हम दूर भागते हैं। जैसा बोलते हैं, यदि वैसा ही हम 'सोनिया' को 'सोनियाँ' के रूप में लिखते हैं, तब भाषा और शब्दार्थ में कौन सा पहाड़ टूट पड़ेगा। यह बात अलग है कि हम ऐसे शब्दों का शुद्ध रूप रोमन वर्तनी में नहीं लिख सकते हैं, परिणामतः हमें झुंझलाहट होती है, और हम हार मानकर अंग्रेजी रूप SONIYA (सोनिया) स्वीकार कर लेते हैं। यह प्रवृत्ति ठीक नहीं हैं। उक्त उदाहरणों में भले ही कुछ विदेशी भाषाओं के शब्द हों; परन्तु जब हम उन्हें हिन्दी भाषान्तर्गत स्वीकार करते हैं; तब वे शब्द हिन्दी की रूप-रचनानुसार ही स्थान पायेंगे, अन्यथा उच्चारण और लेखन में भेद बना ही रहेगा। इसलिए अनायास आगत उच्चारणगत् अनुनासिकता (ँ) को लेखन में स्वीकार करना चाहिए। ऐसा करने से शब्द-विपर्यय अथवा अर्थक्षरण की भी सम्भावना नहीं दिखायी देती है।

हिन्दी में 'न्ह' और 'म्ह' ध्वनियाँ प्रचलन में है। क्या इन्हें नासिक्य ध्वनियाँ कहा जा सकता है? चूँकि उक्त दोनों ध्वनियाँ नासिक्य तो हैं, पर पंचमाक्षर नियम का पालन नहीं करती हैं। तो क्या तुंहें (तुम्हें) तुंहारा (तुम्हारा), उंहें (उन्हें), तंहा (तन्हा) सिंहा (सिन्हा) ब्रंहा (ब्रम्हा), अपरांह (अपरान्ह) चिंह (चिन्ह) आदि को अनुस्वार रूप में लिखा जाना चाहिए? नहीं क्योंकि- '' 'न्ह' यह वर्त्स्य सघोष महाप्राण नासिक्य है। हिन्दी और उसकी बोलियों में यह सर्वत्र प्रयुक्त होता है। 'म्ह' यह ओष्ठ्य सघोष महाप्राण नासिक्य है। यह हिन्दी और उसकी बोलियों में शब्द के आदि व अन्त में मिलता है।'' स्वर रहित नासिक्य व्यंजन ध्वनियों का प्रयोग शब्द के मध्य में ही होता है, इसलिए इन्हें अनुस्वार रूप में नहीं लिखना चाहिए। हिन्दी में 'ङ्' और 'ञ्' नासिक्य व्यंजन

ध्वनियों का न तो शुद्ध उच्चारण होता है और न ही यह ध्वनियाँ हिन्दी शब्दों में कहल प्रयुक्त होती हैं तथा हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुरूप भी नहीं हैं। इसलिए उक्त दोनों ('ङ' और 'ञ') ध्वनियों के लिए अनुस्वार विन्दु का प्रयोग करना समीचीन होगा। अर्थात हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुसार 'ङ्' और 'ञ्' व्यंजन ध्वनियों को अनुस्वार विन्दु के रूप में; और 'ण', 'न्' 'म्' व्यंजन ध्वनियों को अनुस्वार के रूप में न लिखकर मूल व्यंजन के रूप में ही लिखना चाहिए। हिन्दी में 'म्ह' और 'न्ह' दोनों स्वतन्त्र एवम् संयुक्त नासिक्य व्यंजन ध्वनियाँ प्रचलित हैं, अस्तु इन दोनों ध्वनियों का प्रयोग मूलतः 'न्ह', और 'म्ह' के रूप में ही होना चाहिए। इनका प्रयोग अनुस्वार के रूप में नहीं करना चाहिए।

हिन्दी और संस्कृत भाषा में अनुस्वार (ं) का प्रचलन है और आवश्यक भी है। अनुस्वार भी एक अयोगवाह नासिक्य व्यंजन ध्वनि है। जिसका उच्चारण स्वर यन्त्र के नासिका से होता है। अनुस्वार का प्रयोग वहाँ होता है, जहाँ संस्कृत का पंचमवर्ण-प्रयोग का नियम लागू नहीं होता है। अर्थात् य्, र, ल, व् ,श्, ष, स् और ह् व्यंजन-ध्वनि के उच्चारण पूर्व उच्चरित नासिक्य ध्वनि के लिए अनुस्वार (अं) का प्रयोग किया जाता है। ''अनुस्वार तब लिखा जाए जबकि उच्चारण में 'न' स्पष्ट सुनाई दे। हवा केवल नाक से निकलती है। आनुसिकता तब लिखना जरूरी है जबकि ध्वनि का उच्चारण मुख और नाक दोनों से हो।''

हिन्दीभाषी क्षेत्र के तमाम प्रयोक्ता अनुस्वार (ं) और अनुनासिकता (ँ) में कोई फ़र्क करना ही नहल जानते हैं। दोनों को एक मानकर अनुस्वार (ं) का ही प्रयोग करते देखे जाते हैं- जैसे 'माँ' को 'मां', 'आँख' को 'आंख' 'पाँच' को 'पांच' 'मुँह' को 'मुंह' 'कहाँ' को 'कहां' आदि रूपों में लिख-पढ़कर अज्ञानी लेखक एवं पाठक गद्गद् होता रहता है। यदि यही प्रवृत्ति बनी रही तब 'हंस' और 'हँस' शब्द समानार्थी हो जायेंगे, जिसका फल शुद्ध लेखन प्रतियोगिता या विभिन्न प्रतिस्पर्धाओं में भोगना पड़ेगा और भाषा-विशेषज्ञ के समक्ष ग्लानि-भाव धारण करना पड़ेगा। हिन्दी और संस्कृत भाषा में 'त' वर्ग एवं 'प' वर्ग के वर्णों के साथ नासिक्य ध्वनि प्रयोग में क्रमशः 'न्(न्) और 'म्(म्) का प्रयोग किया जाना चाहिए, शेष वर्गीय और गैरवर्गीय व्यंजनों के साथ अनुस्वार (ं) का प्रयोग किया जाना उचित है; लेकिन संस्कृत शब्दों के तत्सम रूपों के लेखन हेतु पंचम-वर्ण-नियम का पालन होना चाहिए। जैसे- 'पङ्कज (पंकज)', 'सञ्जय (संजय)', 'घण्टा (घंटा)', आदि रूप लिखे जाने चाहिए। चूँकि हिन्दी में 'ङ', 'ञ' और 'ण' ध्वनियाँ नहीं है अस्तु तीनों के उच्चारण में अनुस्वार (ं) ध्वनित होता है। अतः अनुस्वार (ं) प्रयोग उचित है। जैसे- नंगा, पंगा, चंगा, पंछी, गंजिया, टंटा, फंड, मंजू, कंडा, वंडा, डंडा, कंठी, ठंडा, आदि शब्द हिन्दी के शुद्ध रूप हैं। परंतु इसी क्रम में 'अम्माँ' को 'अंमाँ' 'चन्ना' को 'चंना', 'चन्दा' को 'चंदा', 'पम्प' को 'पंप' नहीं लिखा जा सकता है, क्योंकि ये हिन्दी के अशुद्ध रूप हैं; इसलिए कि यहाँ पर पंचम-वर्ण-नियम प्रयोग का पालन नहीं किया गया है जो आवश्यक होता है, जिससे भाषा की मानकता प्रमाणित होती है और पालन करने में कोई व्यवधान भी नहीं है।

अनुस्वार के सम्बंध में डॉ. जगदीश प्रसाद कौशिक का मत है कि- ''अनुस्वार वस्तुतः स्वर और व्यंजन के बीच की कड़ी है। अनुस्वार हमेशा स्वर के पश्चात् आता है इसलिए इसे अनुस्वार कहते हैं, अर्थात जो

स्वर का अनुसरण करे वह अनुस्वार है।''[6] अनुस्वार (ं) एक स्वतन्त्र ध्वनि नहीं है, क्योंकि इसका लिपि-चिन्ह स्वर और व्यंजन लिपि चिन्हों की तरह स्वतन्त्र नहीं है। भले ही अनुस्वार (ं) का उच्चारण 'ङ्', 'ञ', 'ण्,' 'न्', 'म्' के रूप में होता है, पर प्रयोग के लिए उक्त नासिक्य व्यंजनों का विकल्प नहीं बन सकता है। संस्कृत में तो बिलकुल नहीं। हिन्दी में अवश्य 'ङ्' और 'ञ' के स्थान पर अनुस्वार प्रयुक्त होता है। डॉ. पृथ्वीनाथ पाण्डेय का विचार है कि ''स्वर के पश्चात् आने वाली नासिका ध्वनि को 'अनुस्वार' कहते हैं। 'य', 'र', 'ल' के पूर्व अनुस्वार का उच्चारण 'न्' होता है: जैसे- संयम, संरक्षक, संलाप। 'प' तथा 'व' के पूर्व अनुस्वार का उच्चारण 'म्' होता है: जैसे-सम्पादक, संवाद। ऊष्म व्यंजनों के पूर्व अनुस्वार का उच्चारण 'न्' होता है, जैसे- संसद्, संसार।'' उक्त कथन में पाण्डेय जी का 'सम्पादक' शब्द का उदाहरण भ्रान्ति पैदा करता है; क्योंकि 'सम्पादक' शब्द में 'प' के पूर्व उच्चरित नासिक्य ध्वनि 'म' ही है, न कि अनुस्वार (ं)। और यदि 'म' अनुस्वार ध्वनि है, तब 'सम्पादक' शब्द को 'संपादक' के रूप में लिखा जाना चाहिए, जो कि पंचम् वर्ण-नियम-प्रयोग का अतिक्रमण करता है। अतः 'प' ध्वनि के पूर्व उच्चरित नासिक्य ध्वनि के लिए अनुस्वार का प्रयोग स्वीकार नहीं है और उक्त नासिक्य ध्वनि अनुस्वार भी नहीं है। अनुस्वार प्रसंग में डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी लिखते हैं कि- ''अनुस्वार एक व्यंजन ध्वनि है। अनुस्वार की ध्वनि प्रकट करने के लिए वर्ण पर बिन्दु लगाया जाता है। तत्सम शब्दों में अनुस्वार लगता है और तद्भव रूपों में चन्द्रबिन्दु लगता है।'' परन्तु इतना तो तय है कि अनुस्वार एक व्यंजन ध्वनि है और इसका प्रतीक चिन्ह बिन्दु (ं) है। व्यंजन के रूप में इसका प्रयोग विशेषकर हिन्दी भाषा में 'क' वर्ग एवं 'च' वर्ग के व्यंजनों और य, र, ल, व, श, ष, स, ह वर्गों के पूर्व नासिक्य ध्वनि के रूप में होता है।

हिन्दी में एक ही शब्द को दो या दो से अधिक रूपों में लिखने की परम्परा विद्यमान है, जैसा- माँ-मां, आँख-आंख, एवम्-एवं, स्वयम्-स्वयं, कुँवर-कुंवर, अम्माँ-अंमां, अम्वा-अंवा, कण्डा-कंडा, घण्टा-घंटा, मान्यवर-मांयवर, दिगम्बर-दिगंबर, आदि। उक्त जैसे अनेक उदाहरणों में प्रथम रूप ही मान्य और व्याकरणगत नियमों से स्वीकृत हैं। दूसरे रूपों का प्रयोग करना अज्ञानता बोध ही है। यदि हिन्दी में शुद्ध और मानक वर्तनी लेखन के लिए अनुनासिकता (नासिक्य स्वर और नासिक्य व्यंजनों-ङ्, ', ण, न, म्, न्ह, म्ह, और अं) का समुचित प्रयोग करना आरम्भ कर दिया जाए तब शब्द और वर्तनी की अशुद्धता और अमानकता की समस्या ही नहीं रहेगी। अग्रलिखित साधारण से नियमों का पालन कर हिन्दी की दीर्घकालीन मानक गतिशीलता को बनाये रखा जा सकता है।

1. जितने भी तद्भव या देशज शब्द हैं, उनमें यदि मुख और नासिका से एक साथ स्वरध्वनि निकलती हैं, तब ऐसे शब्दों में अनुनासिक स्वर ध्वनियों अँ, आँ (ॅ), इँ (ि), ईं (ी), उँ (ु), ऊँ (ू), एँ (े), ऐं (ै), ओं (ो), औं (ौ) का प्रयोग करना उचित होगा।
2. संस्कृत के तत्सम शब्दों के लिए 'क' वर्ग एवं 'च' वर्ग के व्यंजनों के पूर्व, और य, र, ल, व, श, ष, स, ह व्यंजनों के पूर्व, उच्चरित नासिक्य ध्वनि के लिए अनुस्वार चिन्ह (ं) का प्रयोग करना चाहिए। परन्तु ध्यान रहे कि संस्कृत शब्दों में य, र, ल के पहले उच्चरित नासिक्य ध्वनि 'न' का बोध और 'व्'

के पूर्व 'म्' का बोध तथा श, ष, स, के पूर्व 'ङ' का बोध कराती है; इसलिए वर्तनी में मात्र अनुस्वार बिन्दु (ं) का ही प्रयोग करना उचित है।

3. 'न्ह' और 'म्ह' ध्वनियाँ सिर्फ हिन्दी में उच्चरित हैं, संस्कृत में नहीं, इसलिए इनका प्रयोग ज्यों का त्यों होना चाहिए। इनके स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग स्वीकार नहीं होना चाहिए।

4. विदेशी भाषाओं के नासिक्य युक्त शब्दों को हिन्दी तद्भव रूपों में लिखना चाहिए।

5. भाषा के व्याकरणिक नियमों में कुछ अपवाद भी होते हैं। जैसे कि 'जन्म' शब्द को पंचमवर्ण नियमानुसार 'जम्म' नहीं लिख सकते हैं तथा अनुस्वार प्रयोग कर 'जन्म' को 'जंम' भी नहीं लिख सकते हैं। ठीक इसी तरह 'अन्य' को 'अंय' और 'अन्वय' का 'अंवय' नहीं लिखा जा सकता है। 'सन्यास' को 'सन्यास' के रूप में ही लिखा जायेगा।

6. कुछ अपवादों को नियम-बद्ध नहीं किया जा सकता है, जैसे-'जन्म' शब्द को 'जम्म' या 'जंम' नहीं लिखा जा सकता; क्योंकि यह शब्द 'जन्म' के रूप में रुढ़ हो चुका है। यह तर्क किया जा सकता है कि 'अन्य' को 'अंय', 'वन्य' को 'वंय', 'अन्वय' को 'अंवय', 'तन्वि' को 'तंवि' लिखा जाना चाहिए: क्योंकि यहाँ 'य' और 'व' के पूर्व नासिक्य व्यंजन ध्वनि का उच्चारण होता है। परन्तु इस तर्क का समाहार यह है कि 'य' और 'व' ध्वनि के पूर्व उच्चरित 'न' ध्वनि अनुनासिक व्यंजन ध्वनि का बोध नहीं कराती है। इसी तरह 'सम्यक' शब्द को 'संयक' नहीं लिखा जा सकता, क्योंकि यहाँ भी 'म्' ध्वनि अनुनासिकता के बोध से परे है।

7. संस्कृत के 'चिह्न, वह्नि, अपराह्न, पूर्वाह्न, मध्याह्न' जैसे तत्सम शब्दों के तद्भव रूप क्रमशः 'चिन्ह, वन्हि, अपरान्ह, पूर्वान्ह, मध्यान्ह' हैं। इस तथ्य का ध्यान रखना चाहिए कि तत्सम का तद्भव रूप लिखते समय अनर्थ या दोहरे रूप की गुंजाइश बिलकुल न हो।

8. हिन्दी शब्द के अन्त में अनुस्वार का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जैसे- एवम् को 'एवं' 'अहम्' को 'अहं' आदि नहीं लिखना चाहिए; क्योंकि ऐसे शब्दों की शब्दान्त ध्वनि 'मकार' है अनुस्वार नहीं। अर्थात स्वर रहित व्यंजन 'म्' का उच्चारण होता है न कि अनुस्वार का।

9. हिन्दी शब्द-ध्वनियों में अनुस्वार की अवधारणा नहीं है। अतः सायास या अनायास हिन्दी शब्दों में अनुस्वार का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिए। तत्सम से तद्भव में परिवर्तित शब्दों में ही 'ङ', 'ञ' ध्वनि के विकल्परूप में अनुस्वार का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे- संकोच (सङ्कुचन) पंकज (पङ्कज) संचार, (सञ्चार), आदि। माँ, आँख, पाँख, चाँद, डाँट, फाँद, साँड़, भाँड़, गाँव, छाँव, जाँघ, झाँझ, ठाँव, डाँग, ढाँक, ताँत, दाँव, काँस, नाँद, बाँध, मियाँ, गेहुवाँ, राँड़, लाँक, हाँक आदि शब्द रूपों का प्रयोग करना चाहिए। ऐसे शब्दों में अनुस्वार का प्रयोग बिलकुल भी नहीं किया जाना चाहिए; क्योंकि इनका उच्चारण नासिक्य स्वर ध्वनि (ँ) के रूप में होता है, अनुस्वार ध्वनि (ं) के

रूप में नहीं।

हिन्दी भाषा के लिखित स्वरूप को प्रभावी, स्पष्ट और मानक बनाने के लिए तथा उसकी दीर्घकालिक उपस्थिति के लिए आवश्यक नियमों का पालन अपरिहार्य हो जाता है, अन्यथा मौखिक उच्चारण-रूपों और लिखित परिलक्षित रूपों में वैषम्य होने पर अर्थ का अनर्थ करने में लोग संकोच नहीं करेंगे। यह तथ्य सत्य है कि भाषा परिवर्तनशील होती है, वह बन्धनों को स्वीकार नहीं करती है, और यदि उसे बन्धनों में जकड़ दिया गया तो वह मरणासन्न हो जाती है। परन्तु भाषा की गरिमा, मानकता और जीवन्तता को बनाये रखने के लिए उसकी कुछ मर्यादाएँ अवश्य नियत करनी चाहिए, अन्यथा वह उच्छृंखल होकर कभी भी अशुभ कर सकती है; क्योंकि ''हिन्दी भाषा में जो बोला जाता है, वही लिखा जाता है और जो लिखा जाता है, वही पढ़ा जाता है।'' अस्तु हिन्दी भाषा की मानक सर्वव्यापकता एवम् सर्वस्वीकृति के लिए उसके नासिक्य एवम् अनुनासिक ध्वनि-चिन्हों को नियत स्थान पर प्रयुक्त करना होगा, ताकि गैर हिन्दी भाषी भारतीयों एवम् विदेशी विद्वानों, नागरिकों को हिन्दी भाषा सीखने में, उसका अनुकरण करने में दुविधा या विरोधाभास का सामना न करना पड़े, तभी हमारी हिन्दी राष्ट्रभाषा का वास्तविक ताज धारण कर सकेगी।

हिन्दी भाषा में जैसा बोला जाता है कि ठीक वैसा ही लिखा जाता है; और जैसा लिखा होता है, वैसा ही पढ़ा जाता है। जहाँ पढ़ने एवं लिखने में भिन्नता होती है, वहीं पर दोष उत्पन्न होते हैं। अशुद्धियों के लिये वर्णमाला की अज्ञानता, उच्चारण दोष, विपर्यय, स्थानीय बोलियों का प्रभाव, संस्कृत भाषा की संयोगात्मक प्रवृत्ति, आवयविक दोष, मात्राओं की अज्ञानता, ध्वनि-साम्य, शब्द-साम्य आदि अनेक कारण जिम्मेदार होते हैं। संस्कृत भाषा हेतु प्रयुक्त वर्णमाला की अपेक्षा हिन्दी भाषा हेतु प्रयुक्त वर्णमाला में वर्णों की संख्या अधिक है, क्योंकि संस्कृत भाषा यथास्थितिवादी है; जबकि हिन्दी भाषा प्रगतिगामी है। संस्कृत ने इतर भाषा-ध्वनियों को आत्मसात् नहीं किया है, जबकि हिन्दी ने प्राकृत, अपभ्रंश, अरवी, फारसी, अंग्रेजी, आदि अन्य विदेशी भाषाओं की ध्वनियों को अंगीकार कर वर्णिक ध्वनियों की संख्या में वृद्धि की है। हिन्दी भाषा हेतु देवनागिरी लिपि में वर्णमाला के लिखित क्रम को निम्नांकित ढंग से निर्धारित किया जा सकता है। जैसे-

स्वर वर्ण- अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ, अँ, अॅ

मात्राएँ- -, ा, ि, ी, ु, ू, ृ, े, ै, ो, ौ, ँ, ॅ

अनुस्वार - अं(ं) विसर्ग - अः(:)

व्यंजन वर्ण (क वर्ग) - क्, ख, ग, घ, ङ्(अं)

व्यंजन वर्ण (च वर्ग) - च्, छ, ज, झ, ञ्(अं)

व्यंजन वर्ण (ट वर्ग) - ट्, ठ, ड्, द, ण

व्यंजन वर्ण (त वर्ग) - त्, थ्, द्, ध्, न्

व्यंजन वर्ण (प वर्ग) - प, फ, व्, भ, म्

अवर्गीय व्यंजन- य, र, ल, व्, श्, ष, स्, ह्, क्ष्, त्र, ज्ञ, ड़, ढ़, क, ख, ग, ज़, फ़

1. मूल स्वर- अ, इ, उ, ए, ओ

2. दीर्घ स्वर- आ, (अ+अ), ई (इ+इ), ऊ (उ+उ), ऐ (अ+ए), औ (अ+ओ)

3. संयुक्त स्वर- ऐ (अ+ए), औ (अ+ओ)

4. आयातित स्वर- (1) ऋ- संस्कृत भाषा का स्वर है। यह सिर्फ संस्कृत शब्दावली में प्रयुक्त होता है। हिन्दी शब्दों में इसका कहीं भी प्रयोग नहीं है। बल्कि हिन्दी में यह ध्वनि 'रि' वर्ण के समान उच्चरित और लिखित प्रयुक्त होती है।

(2) ॲ- अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग हिन्दी में देवनागरी लिपि में किया जाता है। हिन्दी के मूल शब्दों में इसका प्रयोग नहीं है।

लेखन एवं उच्चारण में मात्रा दोष भी परिलक्षित होता है। कुछ प्रयोक्ता अज्ञानतावश और कुछ क्षेत्रीय बोलियों के प्रभाववश अनुपयुक्त मात्राओं का प्रयोग करते रहते हैं, जिसके कारण वर्तनी के शुद्ध रूप प्राप्त नहीं हो पाते हैं; साथ ही अनर्थ की गुंजाइश अधिक बनी रहती है। जैसे 'फूल' को 'फुल', 'कूल' को 'कुल' आदि अनेक शब्दों में दीर्घ 'ऊ' (ू) को ह्रस्व 'उ'(ु) की मात्रा में बदल दिया जाता है, जो ठीक नहीं हैं। इसी तरह 'इ'(ि) और 'ई'(ी) की मात्रा प्रयोग में असावधानी नजर आती है। 'हरिकिशन' को 'हरीकिशन', 'परिचित', को 'परीचित' 'हरिसिंह' को 'हरीसिंह' 'अंजलि' को 'अंजली', 'सुरभि' को 'सुरभी' 'रवि' को 'रवी' आदि लिखे एवं पढ़े जाने वाले शब्दों में वर्तनी दोष स्पष्ट है, परन्तु 'हिन्दी है', कहकर अपनी अज्ञानता से पल्ला झाड़ लिया जाता है। कई भौगोलिक और भाषाई क्षेत्रों में तो 'ऐ' और 'औ' की मात्राएँ ही प्रयोग में नहीं लायी जाती हैं। 'बेल' और 'बैल' में कोई अंतर ही नहीं मानते हैं; जबकि दोनों के अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। फिर भी लेखक और पाठक 'बेल' और 'बैल' को 'बेल' लिखना और बोलना पसंद करते हैं। ऐसे में वे या तो प्रसंगानुसार अर्थ ग्रहण करते हैं या फिर 'ए' और 'ऐ' की मात्राओं का ज्ञान ही नहीं रखते हैं। यही हाल 'ओ' और 'औ' मात्रा वाले शब्दों का है। 'ओर' और 'और' में भी कोई अंतर न समझकर एक मान लिया जाता है और अपेक्षित अर्थ समृद्ध पाठक या श्रोता को प्राप्त नहीं हो पाता है; जबकि मात्रा-भेद के कारणस्वरूप 'ओर' का अर्थ 'तरफ' दिशा वोध, Side आदि है तथा 'और' का अर्थ 'अन्य' या and (दूसरा) आदि है। इसी तरह यदि 'बढ़ा (अग्रिम, आगे वृद्धि) को अज्ञानतावश 'बड़ा (दीर्घ, large) लिखेंगे और पढ़ेंगे तब हिन्दी में वर्तनीगत अशुद्धियाँ बनी ही रहेंगी; तथापि भाषा के उत्तम स्वरूप को नहीं पाया जा सकेगा। इतर हिन्दीभाषी जानकार हमारी और हमारी हिन्दी भाषा की खिल्ली ही उड़ायेगा, क्योंकि वह हिन्दी भाषा के मानक स्वरूप को सीख चुका होता है।

5. अनुस्वर- अं- हिन्दी में अनुस्वार का प्रयोग 'प' वर्ग के व्यंजनों को छोड़कर सभी व्यंजनों के साथ किया जाता है। चूँकि 'अं' का उच्चारण रोमनलिपि के 'N' वर्ण के समान होता है, इसलिए इस वर्ण का प्रयोग सिर्फ शब्दों के मध्य में ही किया जा सकता है, प्रारंभ और अन्त में नहीं। जैसे- अंश, अंगद, पंकज, दंड, दंत, संयंत्र, वंश, हंस,

अहंकार, संयम, स्वतंत्र आदि। इस वर्ण की एक विशेषता यह भी है कि इसका प्रयोग ऊपर की ओर लगी मात्रा वाले वर्ण के साथ नहीं होता है।

6. नासिक्य स्वर- नासिक्य स्वर मुख और नासिका से एक साथ संयुक्त रूप में निकलते हैं। इसका लिपिचिन्ह चन्द्रबिन्दु (ँ) है। यह मूल स्वरों से संयुक्त होकर अँ, आँ, इँ, ईं, उँ, ऊँ, एँ, ऐं, ओं, औं के रूप में प्रयुक्त होते हैं। संस्कृत और अंग्रेजी भाषा में नासिक्य स्वर-ध्वनियों का अभाव है।

7. विसर्ग- ' : ' विसर्ग ध्वनि का लिपि संकेत (अः) है। विसर्ग का प्रयोग हिन्दी भाषा में कहीं नहीं होता है। इसका प्रयोग सिर्फ संस्कृत शब्दावली में होता है। हिन्दी भाषा में विसर्ग के स्थान पर 'ह' वर्णध्वनि का प्रयोग किया जाता है, जैसे 'छः' के लिए छह (6) प्रयोग होता है।

उक्त ध्वनियों में से 'ऋ' और 'अॅ' स्वर ध्वनियों का प्रयोग हिन्दी शब्दों में नहीं होता है। 'ऋ' का प्रयोग संस्कृत शब्दावली में ही प्रयुक्त होता है- जैसे कृषि, पृथ्वी, आकृति, प्रवृत्ति, वृत्त, कृष्ण, कृपा, नृप, सृष्टि, शृंगार, दृश्य, पितृ, मातृ, भ्रातृ, आदि। इसी प्रकार से 'अॅ(ॅ)' ध्वनि का प्रयोग अंग्रेजी शब्दों में ही होता है। जैसे- डॉक्टर, कॅरियर, डॉल, टॉय, ऑफिस, ऑफर, कॉल, हॉट, कॉलेज, कॉमन, क्लॉक, डॉग, फ्रॉक, चॉक, फ्रॉड, सॉप, डॉट आदि। चूँकि हिन्दी भाषा समस्त भाषाओं को स्वीकार करने में समर्थ हैं इसलिए इसने संस्कृत शब्दावली को ज्यों-का-त्यों ग्रहण करने के लिए 'ऋ' स्वर ध्वनि को तथा अंग्रेजी शब्दावली को ज्यों-का-त्यों ग्रहण करने के लिए 'अॅ' ध्वनि को स्वीकार किया है। सामान्यतः यह संज्ञान में आता है कि प्रयोक्ता उक्त दोनों ध्वनियों (ऋ और अॅ) की मूल भावना से अपरिचित होने पर मात्रा प्रयोग में त्रुटि कर बैठता है। जैसे 'कृपा' को 'क्रपा', 'सृष्टि' को 'स्रष्टि', 'शृंगार' को 'श्रृंगार' 'दृश्य' को 'द्रश्य', 'कॉलेज' को 'कालेज', 'कौलेज', 'कालिज', 'कोलेज', 'ऑफिस' को 'आफिस', 'औफिस', 'ओफिस', 'डॉक्टर' को 'डाक्टर', 'डौक्टर', 'डोक्टर' आदि रूपों में लिखकर एवम् पढ़कर स्वर संबंधी अशुद्धियाँ कर बैठता है जो भाषा की दृष्टि से क्षम्य नहीं हैं।

'ड़' और 'ढ़' का प्रयोग - संस्कृत भाषा, बुन्देली बोली, मालवी बोली, निमाड़ी बोली में 'ढ़' ध्वनि का अभाव है। लेखक या वाचक 'ढ़' ध्वनि को 'ड' ध्वनि मानकर 'पढ़ना' को 'पड़ना' 'चढ़ना' को 'चड़ना' 'गढ़' को 'गड़' 'चढ़ार' को 'चड़ार' 'कढ़ाई' को 'कड़ाई' लिखने और पढ़ने लगता है, जिससे अर्थ का अनर्थ हो जाता है। 'ढ' ध्वनि का उच्चारण रोमन की ध्वनि RH जैसा होता है- जैसे 'गढ़' को GARH, 'राजगढ़' को RAJGARH लिखा और पढ़ा जाता है। कुछ प्रयोक्ता 'ढ़' को 'ढ' मानकर प्रयोग करते हैं। जैसे 'बढ़िया' को 'बढिया' 'बूढ़ा' को 'बूढा' आदि लिखकर और बोलकर त्रुटि करते हैं और साथ ही भावी पीढ़ी को भी दिग्भ्रमित करते हैं। इसी तरह 'ड' ध्वनि के प्रयोग में 'ड़' के स्थान पर 'ड' का प्रयोग बहुत लोग करते हैं- जैसे 'गाड़ी' को 'गाडी' 'बड़बड़ाना' को 'बडबडाना', 'खिचड़ी' को 'खिचडी' आदि लिखकर वर्तनीगत अशुद्धियाँ करते हैं। हिन्दी को दीन-हीन मानकर मनमाना व्यवहार किया जा रहा है, जो प्रयोक्ता के व्यक्तित्व के कमजोर पक्ष को उद्घाटित करता है। वर्णमाला की अज्ञानता प्रयोक्ता के समस्त लेखन और पठन-पाठन को दुष्प्रभावित किये बिना नहीं छोड़ती है।

'ह' का प्रयोग - 'ह' ध्वनि के उच्चारण और लेखन-प्रयोग में भी असावधानी की जाती है। कुछ प्रयोक्ता 'ह' को

'हे' अथवा 'हि' के रूप में उच्चारित करते और लिखते हैं। जैसे- 'साहब' को 'साहेब' या 'साहिब', 'महल' को 'महेल' या 'महिल' उच्चारित करते हैं और लिखते भी हैं। कोई भी व्यंजन बिना मात्रा जोड़े पूर्णतः उच्चारित नहीं किया जा सकता है। अतः मूल व्यंजन 'ह्' में 'अ' स्वर (मात्रा) जुड़ने पर ही उसका उच्चारण 'ह' होता है। ऐसी स्थिति में 'ह' वर्ण का उच्चारण 'हे' या 'हि' करना दोषपूर्ण है। उक्त दोष से बचना चाहिए।

संयुक्त वर्ण प्रयोग - सन्धियों का उचित ज्ञान न होने के कारण भी वर्तनीगत अशुद्धियाँ होती हैं। जैसे कि 'विदेश' शब्द का पर्यायवाची शब्द 'अन्तर्राष्ट्रीय' अशुद्ध एवं अनर्थकारी है, क्योंकि संधि विच्छेद करने पर अंतः+राष्ट्रीय = अंतर्राष्ट्रीय होता है, जिसका अर्थ होता है 'राष्ट्र की सीमाओं के अंदर' अर्थात् राष्ट्रीय अथवा अंतर्देशीय (देश के अन्दर)। विदेशवाची अर्थ के लिए 'अन्तरराष्ट्रीय शब्द ही उचित है जिसका अर्थ है- अंतर+राष्ट्रीय = 'अन्तरराष्ट्रीय' अर्थात् राष्ट्र की सीमाओं से बाहर, परदेश, विदेश, अन्य-राष्ट्र आदि। 'अन्तरराष्ट्रीय' संकर शब्द है जो हिन्दी (अंतर) और संस्कृत (राष्ट्र) भाषाओं के मेल से बना हैं। विद्या, विद्यालय, उद्योग, उद्यम आदि शब्दों के उच्चारण और लेखन में भी बहुत अधिक त्रुटियाँ की जाती हैं। इसका मूल कारण है- वर्ण-संयोगत। संयुक्त वर्ण 'द्य' द्+य्+अ के संयोग से बना है जिसका वियोगीकृत रूप 'द्य' है, जिसे संकुचन विधि से द्+य= 'द्य' लिखा जाता है। इस 'द्य' को पाठक 'द्य' न समझकर 'ध', 'ध्य', या 'घ' के रूप में ग्रहण कर लेता है। परिणामतः शब्द का उच्चारण एवम् लेखन अशुद्ध हो जाता है। जैसे कि अनेक विद्यार्थियों, आम नागरिकों एवम् उच्च शिक्षित नौकरी-पेशा लोगों द्वारा 'विद्यालय' (विद्यालय) शब्द का उच्चारण 'विद्धालय', 'विधालय', विध्यालय, विघालय 'विद्ध्यालय' आदि रूपों में किया जाता है जो पूर्णतः अनुचित है। यदि 'विद्यालय' शब्द को वियोगात्मक ढंग से 'विद्यालय' के रूप में लिखा जाए, तब त्रुटिपूर्ण उच्चारण एवं लेखन की समस्या स्वतः ही समाप्त हो जायेगी। टंकण (टाइप राइटिंग) और हस्तलेखन में प्रायः यह देखने को मिलता है कि प्रयोक्ता (लेखक) 'द्व(द्व) के लेखन प्रयोग में त्रुटि करता है। वह 'द्वारा' को 'व्दारा' के रूप में लिखता है लेकिन पढ़ता 'द्वारा (द्वारा)' ही है। उसका कारण यह है कि उसे द्वारा शब्द के वियोगात्मक रूप 'द्वारा' का ज्ञान नहीं है। इसी तरह, 'सिद्धान्त' को 'सिध्दांत' के रूप में लिखा पाया जाता है। यदि इसे 'सिद्धान्त' (सिद्धान्त) के रूप में लेखन-प्रयोग किया जाए, तब इस तरह की त्रुटियों से बचा जा सकता है।

'व' और 'व' वर्ण का प्रयोग - अनेक भाषाई क्षेत्रों में 'व' और 'व' में कोई अन्तर नहीं किया जाता है और परिणाम अनर्थकारी होता है- जैसे 'वह' को 'वह' लिखा और पढ़ा जाता है। जबकि 'वह' का अर्थ सर्वनामिक प्रयोग है और 'वह' का अर्थ 'वहना' है। 'शिव' का उच्चारण और लेखन 'शिब' के रूप में हो रहा है। शिबनारायण, शिवप्रताप, शिवलाल, शिवा, सम्भावना जैसे अनेकानेक शब्दों का त्रुटिपूर्ण उच्चारण और लेखन प्रायः देखने-सुनने को मिलता रहता है। भाषा को न समझने का परिणाम अनिष्टकारी ही होता है। कई क्षेत्रों की भाषाओं-वोलियों में महाप्राणत्व का अभाव है, जिससे उच्चारण और लेखन त्रुटिपूर्ण होने लगता है, जैसे- 'दूध'

को 'दूद', 'छठवीं' को 'छटवी', 'धंधा' को 'धन्दा', 'भूख' को 'भूक', 'बघार' को 'बगार', 'झुंझुनी' को 'झुंजुनी', 'भट्ठा' को 'भट्टा', 'गड्ढा' को 'गड्डा' आदि जैसे उच्चारण धड़ल्ले के साथ किये जा रहे हैं; और कहीं-कहीं उच्चारणस्वरूप लेखन भी पाया जाता है, जिसे क्षेत्रीयता की दुहाई देकर उचित नहीं ठहराया जा सकता है।

द्वित्व प्रयोग (वर्ण दोहराव) - कुछ शब्दों के उच्चारण में अनावश्यक द्वित्व प्रयोग किया जा रहा है- जैसे 'अन्याय' का उच्चारण 'अन्न्याय' किया जा रहा है। अ+न्याय = अन्याय। 'अ' उपसर्ग जुड़ने से 'न' का दुहराव दूर-दूर तक नहीं है। लेकिन यदि 'अन्' उपसर्ग जोड़ते हैं, तब अवश्य अन्+न्याय = अन्न्याय होगा। रूप दोनों शुद्ध हैं, परन्तु लेखन और उच्चारण में भिन्नता है। 'विद्वान' शब्द का उच्चारण भी द्वित्व के साथ 'विद्द्वान' किया जाता है, लेकिन लिखा विद्वान (विद्वान) ही जाता है। 'विद्या (विद्या)' शब्द को भी 'विद्द्या' के रूप में सुना जाता है। 'सभ्य' को 'सभ्य्य' 'अन्य' को 'अन्न्य' खूब सुना जाता है। वर्ण दुहराव (द्वित्व) वहीं होता है जब दो समान ध्वनियाँ एक ही उच्चारण स्थान से क्रमशः उच्चरित हों, जैसे- दद्दा, पट्टा, मुन्ना, अन्न, किस्सा, उत्तम, गल्ला, पिज्जा, उज्ज्वल, पत्ता, डब्बा, कुप्पा, पप्पू, सुग्गा, जग्गी, कक्का मम्मी आदि।

आमतौर पर व्याकरण का सामान्य सा ज्ञान न होने पर हम शब्दों के अशुद्ध रूपों का प्रयोग करते रहते हैं। कुछ शब्दों के शुद्ध, अशुद्ध रूप निम्नलिखित हैं-

अशुद्ध	शुद्ध	व्याख्या
उपरोक्त	उपर्युक्त	उपरि + उक्त (यण स्वर संधि)
लघुत्तर	लघूत्तर	लघु + उत्तर (दीर्घ स्वर संधि)
अनाधिकृत	अनधिकृत	अन् + अधिकृत (अन् उपसर्ग)
छात्रायें	छात्राएँ	बहुवचन 'एँ' है न कि 'यें'
क्रपा	कृपा	'क' में 'ऋ' स्वर का संयोजन
जगत (विश्व)	जगत्	जगत = कुँए की मुँडेर, जगत् = संसार
नवीं	नौवीं	नौ + वीं (नौवीं) जैसे- सात + वीं (सातवीं)
वजरंगवली	वज्रांगवली	व्रज +अंग = वज्रांग (स्वर संधि दीर्घ)
रुद्राक्ष	रुद्राक्षि	रुद्र + अक्षि (रुद्राक्षि) = शिव-नेत्र
रामौतार	रामावतार	राम + अवतार (दीर्घ स्वर संधि)
उज्जवल	उज्ज्वल	उत् + ज्वल (उज्ज्वल) व्यंजन संधि
लारिया/लड़िया	लढ़िया	'लढ़ी' में 'इया' प्रत्यय है। लढ़ी = बैलगाड़ी लढ़िया का एक अर्थ राजमिस्त्री भी है। उच्चारण दोष के कारण महाप्राण 'ढ' अल्पप्राण 'ड' में बदल जाता है, अतः 'लढ़िया' को 'लड़िया' लिखा, पढ़ा जाने लगा। इसी 'लड़िया' शब्द का रोमन लिप्यन्तरण (LARIYA) है।
करा	किया	क्रिया रूप है। करा, करी, करे, स्थानीय रूप हैं। मानक नहीं है।
चाय बुलाना	चाय मँगाना	निर्जीव वस्तुएँ मँगायी जाती हैं, बुलाई नहीं जाती हैं।
बोलना	कहना	'बोलना' मात्र ध्वनि है। 'कहना' शब्दार्थ है।
स्त्रोत (संसाधन) के अर्थ में	स्रोत (स्रोत)	'र' को 'त्र' मानने से त्रुटि होती है। स्त्रोत-स्तुति पाठ

ISSN 2395-051X

जिन क्रिया-शब्दों का अन्त 'य' से होता है उनके रूप 'य' में लगी मात्राओं से ही बनते हैं। खाया-खायी-खाये, गाया गायी-गाये, आया-आयी-आये, पिया-पिये, नहाया-नहायी-नहाये, मिटाया-मिटायी-मिटाये, लिया-लिये, पढ़ाया-पढ़ायी-पढ़ाये आदि वे समस्त क्रियाएँ जिनका अन्त 'य' से होता है उनमें विकल्प के रूप में 'ये' के स्थान पर 'ए' का प्रयोग कदापि नहीं किया जा सकता है। ऐसे शब्द जो क्रिया का काम नहीं करते हैं, प्रेरणार्थक, आदेशात्मक, आज्ञार्थक या अव्यय हैं, उनमें भूलकर भी शब्दान्त में 'ये' का प्रयोग नहीं करना चाहिए। उक्त शब्दों का अंत ई, ओ 'ए' से ही होता है जैसे- चाहिए, इसलिए, लीजिए, दीजिए, समझाइए आदि। आज्ञा, निवेदन या सलाह जैसी क्रियावाची संज्ञाओं का अन्तिम वर्ण मूल स्वर ही होती है, व्यंजन नही। लिखाओ, पढ़ाओ, दिखाओ, सुनाओ, खिलाओ, पिलाओ, जैसे रूप भी शुद्ध क्रिया शब्द नहीं हैं। गुणवाचक या भाववाचक संज्ञाएँ भी क्रिया के रूप में प्रयुक्त नहीं होती हैं। जैसे मिठाई, खटाई, चटाई (वस्तु) मलाई, सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, भरपाई, अमराई, ढिठाई आदि।

शुद्ध	अशुद्ध
छात्राएँ	छात्रायें
बहुएँ	बहुयें
माताएँ	मातायें
इसलिए	इसलिये
दीजिए	दीजिये
लिखिए	लिखिये
चाहिए	चाहिये
खाई	खायी (जलयुक्त गहरा गड्ढा)
आयी	आई

संस्कृत भाषा में दो स्वर एक साथ स्थान नहीं पाते हैं। इस नियम का पालन हिन्दी भाषा के प्रयोक्ता भी करते हैं जिससे कुछ शब्दों में असहजता सी प्रतीत होने लगती हैं अथवा उच्चारणानुरूप शब्द को लिख नहीं पाते हैं। जैसे 'गइया' हिन्दी का शब्द है। इसमें 'अ' और 'इ' स्वर एक साथ आये हैं, जिसे व्याकरणशास्त्री सुधार कर 'गैया' लिखते हैं; क्योंकि अ+इ=ऐ होता है लेकिन 'गैया' का उच्चारण आमजन में 'गइया' ही होता है। अर्थात् उच्चारण और लेखन में अन्तर पड़ जाता है, इसलिए इस अन्तर को मिटाने के लिए हिन्दी भाषा की प्रकृति का अनुकरण करना चाहिए। हम किसी अन्य भाषा के गुलाम नहीं है, वस्तुतः दो भिन्न प्रकार के स्वर संयोजन का नियम अमान्य होना चाहिए। गइया, भइया, मड़इया, मइया, लड़इया, दइया, भुलइया, लिखवइया, पढ़इया, घुमइया, गवइया आदि की तरह ही हिन्दी शब्द लिखे जाने चाहिए।

जावेगा, खावेगा, पावेगा जैसे शब्द भी शुद्ध नहीं है। धातु में 'ना' प्रत्यय लगने पर वह क्रियापद हो जाती है और जब उस क्रियापद को काल की दशानुसार प्रयोग करते हैं तब उसमें विकार उत्पन्न होता है, पर वह विकार एक ही तरह का होता है, जैसे- खाना, खाया, खायेगा, पढ़ा, पढ़ाया, पढ़ायेगा आदि। भविष्य कालिक क्रिया रूपों को खावेगा, पढ़ावेगा आदि रूपों में नहीं लिखा जाना चाहिए। जब कभी आदेशात्मक क्रियाएँ प्रयोग होती हैं; तब हम लिखवायेगा, पढ़वायेगा, भिजवायेगा, जैसे रूप प्रयोग करते हैं। जिन क्रियाओं में 'वाना' प्रत्यय लगता होता है, उन्हीं के रूपों में 'एँ' लगता है। जैसे लिखवाना, लिखवाएँ। भिजवाएँ आदि।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि यदि भाषा और उसके व्यवहार को आत्मसात् कर लिया जाए, उसकी शब्द और अर्थगत वर्तनी का सूक्ष्म अध्ययन कर लिया जाए तथा उसके मानक रूप को स्वीकार कर प्रयोग में लाना आरम्भ कर दिया जाए, तब हिन्दी भाषा उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक एकरूपता को प्राप्त होगी; तब हम वास्तव में कह सकेंगे कि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है और उसका स्वरूप प्रतिमानित है।

संदर्भ -

1. शर्मा, डॉ. कन्हैयालाल : हिन्दी भाषा एवम् नागरी लिपि का विकास, प्रकाशक-राजस्थानी हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर (राज.) 1984, पृ. 105
2. चौधरी, डॉ. अनन्त : नागरी लिपि और हिन्दी वर्तनी, प्रकाशक- विहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, सम्मेलन भवन, पटना-3, जनवरी 1973, पृ.158
3. चतुर्वेदी, राजेश्वर प्रसाद : हिन्दी व्याकरण, उपकार प्रकाशन आगरा, उ.प्र. पृ. 42
4. शर्मा, डॉ. कन्हैयालाल : हिन्दी भाषा एवम् नागरी लिपि का विकास, प्रकाशक-राजस्थानी हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर (राज.) 1984, पृ.109
5. पाण्डेय, पृथ्वीनाथ : मानक सामान्य हिन्दी, अरिहन्त प्रकाशन (इ) प्रा.लि. मेरठ (उ.प्र.), पृ.93
6. कौशिक, डॉ. जगदीश प्रसाद : अच्छी हिन्दी, प्रकाशन- साहित्यागार, चौड़ा रास्ता, जयपुर-3 (राज.) 2001, पृ.57
7. पाण्डेय, पृथ्वीनाथ : मानक सामान्य हिन्दी, अरिहन्त प्रकाशन (इ) प्रा.लि. मेरठ (उ.प्र.) पृ.92
8. चतुर्वेदी, राजेश्वर प्रसाद : हिन्दी व्याकरण, उपकार प्रकाशन आगरा, उ.प्र. पृ.40
9. अवस्थी, डॉ. जमना प्रसाद : हिन्दी ज्ञानोदय, प्रकाशक- ग्रन्थम, मेस्टन रोड, कानपुर (2004), पृ.3